International Journal of Social Science and Humanities
www.humanitiesjournals.com
Online ISSN: 2664-8628 Print ISSN: 2664-861X
Received: 06-12-2024, Accepted: 05-01-2025, Published: 20-01-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 22-25

18वीं शताब्दी के दौरान जाट प्रतिरक्षा व्यवस्था एवं स्थापत्यकला

राजेश
शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा, भारत

सारांश
18वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण अवधि थी, जिसमें मुगल साम्राज्य का पतन और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। 17वीं शताब्दी के मध्य से ही मुगल दरबार में वास्तुकला, शिल्पकला तथा स्थापत्यकला को संरक्षण मिलना लगभग समाप्त हो गया था। औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा सत्ता के लिए किए गए संघर्षों ने कला को धरातल पर ला दिया था। शाही दरबार में समुचित स्थान न मिलने के कारण कलाकारों ने प्रांतीय राज्यों में अपने संरक्षक खोजने प्रारम्भ कर दिए। मुगलों के आगरा सूबे में नवस्थापित जाट रियासत के शासकों ठाकुर बदन सिंह, सूरजमल, जवाहर सिंह आदि को कला के प्रति अत्याधिक लगाव था। उन्होंने स्थापत्य कला में भारी रुचि ली, और साथ ही उसे संरक्षण भी दिया। उन्होंने राज्य के सर्वांगीण विकास तथा लोक कला के संरक्षण हेतु डीग, भरतपुर, कुम्हेर, वैर आदि स्थानों पर मैदानी दुर्ग बनवाये एवं राज्य के अधिकांश सीमांत भागों में स्थान–स्थान पर कच्ची गढ़ियाँ, विशाल तथा भव्य भवनों तथा हवेलियों, छतरियों, आकर्षक उद्यान, बांधों, नहरों, सरोवरों व जलाशयों मन्दिरों व मस्जिदों आदि का निर्माण कराया। इस समय वास्तुकारों, शिल्पियों, दक्ष व कुशल संगतरासों, उस्तादों, मिस्त्रियों व कारीगरों ने दिल्ली, आगरा तथा जयपुर से आकर जाट रियासत में रोजगार प्राप्त कर अपनी कला का विकास किया। एक तरफ जहाँ जाट राज्य के शासक वर्ग द्वारा राज्य के केन्द्र डीग व भरतपुर में वास्तुकला का विकास किया जा रहा था, वहीं दूसरी तरफ राज्य द्वारा संरक्षित सरदारों ने भी स्थानीय स्थापत्य कला को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार जाटों ने दुर्ग, महल, बगीचे आदि बनवाकर अपनी प्रतिरक्षा एवं स्थापत्य कला के परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह शोध पत्र इस अवधि के दौरान जाटों की प्रतिरक्षा एवं स्थापत्य कला अर्थात दुर्ग निर्माण एवं भवन निर्माण शिल्प योगदान की पड़ताल करता है, जिसमें उनके किलेबंदी, और महलों पर जोर दिया गया है, जो मुगल और राजपूत परंपराओं से स्वदेशी शैलियों और प्रभावों का मिश्रण दर्शाता है।

मूल शब्दः प्रतिरक्षा, स्थापत्यकला, दुर्ग, किलेबन्दी, बुर्ज, तोपखाना, पच्चीकारी, मेहराब

18वीं शताब्दी में जाट, मुख्य रूप से एक कृषक समुदाय था। 1669 ई० में औरंगजेब के समय उसकी उत्पीड़क नीतियों से शुरू हुये एक विद्रोह से संगठित होकर वे आताताइयों का सामना करने लगे और एक शक्तिशाली राजनीतिक ताकत के रूप में उभरे। विशेषकर भरतपुर, धौलपुर और मथुरा आदि क्षेत्रों में। अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी गढ़ियाँ बनानी शुरू कर दी जिनकी प्राचीरें प्रयाप्त ऊँची बनाई गयी थी। धीरे–धीरे जाट शक्ति सम्पन्न होते गए और उन्होंने स्वयं का ही राज्य निर्मित कर भरतपुर, डीग, कुम्हेर आदि स्थानों पर बड़े दुर्ग भी बना लिए। उनकी दुर्ग निर्माण कुशलता एवं वास्तुकला उनकी समायानुसार आवश्यकताओं, सामाजिक–राजनीतिक आकांक्षाओं, अंतरग्रहण क्षमता, और सांस्कृतिक संश्लेषण का प्रमाण है। जाट स्थापत्य कला स्थानीय तत्वों को शामिल करते हुए प्रचलित मुगल और राजपूत शैलियों से काफी प्रभावित थी। इसका परिणाम जाटों के अधीन एक विशिष्ट स्थापत्य शिल्प के रूप में उभरा जिसने सौंदर्यता के साथ–साथ रक्षात्मक कार्यक्षमता को भी संतुलित किया। यह अध्ययन जाट स्थापत्य कला की विशेषताओं, इसके विकास और भारतीय स्थापत्य कला इतिहास के व्यापक संदर्भ में इसके महत्व पर प्रकाश डालता है।

जाट प्रतिरक्षा व्यवस्था एवं स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताएँ

जाट शासकों का भारतीय इतिहास में सैन्य और स्थापत्य कला में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके द्वारा निर्मित दुर्ग, महल, भवन एवं उद्यान उनकी सुरक्षा, संगठनात्मक क्षमता और स्थापत्य शैली को दर्शाते हैं। जाट स्थापत्य पद्धति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:–

मजबूत किलेबंदी

जाट शासकों ने डीग, कुम्हेर, भरतपुर आदि जैसे स्थानों पर अनेक किले बनवाये जो उनकी रक्षात्मक स्थापत्य कला प्रतिभा का प्रतीक हैं। जो विशेषताएँ जाटों के दुर्गों में पायी जाती हैं वे वैसी ही हैं जैसी वैदिक आर्यों के दुर्गों में पायी जाती थी। वैदिक साहित्य में इन्हें पत्थर, सूखी ईंटों और यदा–कदा कठोर मिट्टी से बने किलों के रूप में वर्णित किया गया है। आर्यों के किले भी ऐसे ही चौड़े, विस्तृत और मिट्टी एवं पत्थरों से निर्मित थे। समय के साथ, जाटों के दुर्ग स्थापत्य एवं शिल्प में विकास होता गया और दुर्गों की रचना जटिल होती चली गई। दुर्ग का प्राकार दोहरा और कहीं–कहीं तो तिहरा भी हो गया। भरतपुर जैसे दुर्ग में जाट शासकों द्वारा दुर्ग–प्राचीर के बाहर मिट्टी की प्राचीर बनवाई गई थी ताकि तोप के गोले मिट्टी की दीवार में धंस जायें और दुर्ग का वास्तविक प्राकार सुरक्षित रह सके। दुर्ग के चारों ओर खाई खोदकर उसमें पानी भरने की व्यवस्था की गई ताकि शत्रु आसानी से दुर्ग की प्राचीर तक नहीं पहुंच सके। जाटों के दुर्ग विशाल दीवारों से निर्मित और खाइयों से घिरे थे जो लगभग अभेद्य थे। दीवारें मजबूत और ऊंची होती थी जो पत्थर या मिट्टी की बनाई जाती थीं। मुख्य द्वार मजबूत लकड़ी और लोहे से निर्मित होते थे। सैनिकों के रहने के लिए अलग–अलग भाग बनाए जाते थे। दुर्ग में कई परतों की सुरक्षा होती थी, जैसे आंतरिक और बाहरी परकोटे अलग–अलग निर्मित थे। द्वारों एवं दुर्ग प्राचीरों पर सुरक्षा के लिए तोपें और धनुष–बाण रखने के स्थान बनाए जाते थे, जो उनकी मजबूत किलेबंदी को और ज्यादा सुदृढ़ता प्रदान करते थे।

अच्छी भंडारण क्षमता

किसी भी दीर्घकालिक युद्ध की संभावना होने पर उसके मुक़ाबले के लिए जाटों ने मजबूत दुर्गीकरण की व्यवस्था की थी। इन दुर्गों में रहकर किसी भी सेना से स्वयं को सुरक्षित रखा जा सकता था। जाट दुर्गों में खाद्यान्नों का भंडार सदैव भरा रहता था तथा गोला–बारूद एवं तोपखाना निर्मित करने की कुशल

तकनीक व सामग्री इनके पास मौजूद थी। इसी कारण यह किसी भी संभावित खतरे या युद्ध के लिए सदैव आश्वस्त रहते थे। कुम्हेर दुर्ग को जीतने में महीनों बाद भी मराठे इसी कारण असफल रहे कि दुर्ग की सामरिक दृढ़ता, अनाज उपलब्धता एवं गोला बारूद के भंडार जाटों के पास उपलब्ध थे। इसी तरह डीग, भरतपुर तथा वैर में भी मजबूत प्रतिरक्षा व्यवस्था की गई थी। दुर्गों के सभी दरवाजों पर कड़ा पहरा रहता था बुर्जों एवं दीवारों पर तोपें लगाई गई थी। खाद्यान्न, गोला–बारूद, अस्त्र–शस्त्रों आदि की कुशल व्यवस्था थी। यहाँ तक की जानवरों का चारा भी वर्षों तक खत्म न हो सके ऐसी भंडारण व्यवस्था थी। दुर्ग के भीतर सम्पूर्ण नगर बसाने, खेती करने एवं पशु पालन करने की भी परम्परा थी ताकि यदि दुर्ग को शत्रु द्वारा घेर लिया जाये तो लम्बे समय तक दुर्ग के भीतर खाद्य सामग्री एवं अन्य जीवनोपयोगी सामग्री की उपलब्धता बनी रह सके। कुम्हेर व भरतपुर की तरह डीग दुर्ग में भी नवल सिंह की ड्यौढ़ी के दक्षिणी तरफ विस्तृत पक्का घेरा है, जिसमें रथ, घोड़ा, ऊँट, गाय आदि रखे जाते थे और यहीं पर घास का भंडारण था।

कुशल प्रतिरक्षा प्रणाली

जाटों ने अपनी सुरक्षा के लिए कुशल व्यवस्था की थी। इनकी प्रतिरक्षा प्रणाली में दुर्ग से लकड़ी के लठ्ठों में बारूद भरकर बाहर किले को जीतने का प्रयास कर रहे शत्रु पर फेंकना, इसके साथ ही ईंट–पत्थर आदि की शत्रु पर वर्षा करना ताकि उन्हें किले की दीवारों से दूर रखा जा सके आदि जैसी तकनीकें युद्ध कला के तौर पर प्रतिरक्षा हेतु प्रयोग की जाती थी। दुर्ग–प्राचीर से दुर्ग रक्षक सैनिक आक्रांता सैनिकों पर तीर, गर्म तेल, पत्थर आदि फैंकते थे। जब तोपों का प्रचलन हो गया तो प्राचीर के ऊपरी हिस्से में मोखे बनाये जाने लगे जिनमें तोपों के मुंह खुलते थे। दुर्ग की प्राचीर को मजबूत बनाने के लिये उसके बीच–बीच में गोलाकार बुर्ज बनाई जाने लगी जो भीतर से पोली होती थी। इसके भीतर सैनिक एवं युद्ध सामग्री संगृहीत की जाती थी। यही कारण था कि जाट अपनी सामरिक स्थिति को कायम रख सके। भरतपुर दुर्ग की प्रतिरक्षात्मक व्यवस्था पर वेंडल लिखता है कि दुर्ग में सभी प्रकार के गोला–बारूद और तोपों में प्रयोग किए जाने वाले लोहे के निम्नकोटि के टुकड़े व सीसे जैसी धातु का दुर्ग में प्रचुर मात्रा में भंडार था। इस लौह धातु की मार शत्रु को हानि पहुंचाने के लिए एवं एकत्रित भीड़ को हटाने के लिए सहायक थी। जाट प्रतिरक्षा के बारे में खफी खान लिखता है कि "विशाल और अभेद्य किले उन्हें भारी मात्रा में हथियार और गोला–बारूद रखने में मदद करते हैं।" जाटों को अपनी दुर्ग प्रणाली पर पूर्ण भरोसा था। इसी आधार पर जब अहमद शाह अब्दाली ने धन वसूलने के प्रयास में जाट राजा को एक पत्र लिखवाकर भेजा तो सूरजमल ने उसका सुसंस्कृत भाषा में व्यंग्यपूर्ण उत्तर दिया –मेरे जिन किलों को आपने मकड़ी के जाले की तरह कमजोर समझा है, इसकी सच्चाई तो वास्तविक युद्ध के बाद ही परखी जा सकती है। ईश्वर कि इच्छा हुई तो वे सिकंदर कि दुर्ग प्राचीरों जितने ही अजेय सिद्ध होंगे। अहमद शाह अब्दाली की ताकत और उसकी सत्ता को तिलमिलाने वाले कटाक्ष में लिप्त शायद यह उस समय की सबसे अधिक शक्तिशाली चुनौती थी, जिसका शायद ही उसने भारत में सामना किया हो। फिर भी अब्दाली ने उस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नहीं किया। असल में यह जाटों की मजबूत घेराबंदी व सामरिक प्रणाली का ही परिणाम था।

प्रकृति के साथ एकीकरण

जाट शासकों ने अपने दुर्ग तथा भवन निर्माणों में भौगोलिक परिस्थितियों को उचित महत्व दिया है। इन शासकों द्वारा बनवाए गए दुर्ग सामान्यतः ऐसे स्थानों पर थे जो प्राकृतिक रूप से सुरक्षित थे। विभिन्न प्राकृतिक स्थलों जैसे नदी, पहाड़, घने जंगल आदि के समीप दुर्ग निर्माण किया जाता था ताकि दुर्ग पर आक्रमण कठिन हो। निर्माण से पहले जल स्रोतों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती थी। जाट शासकों ने सुरक्षा के लिए स्थानीय संसाधनो का उपयोग रणनितिक तौर पर किया। दुर्गों को इस प्रकार डिजाइन किया जाता था कि उनमें कम सैनिकों से भी बड़ी सेना का सामना किया जा सके। छापामार युद्ध के लिए ऐसे विशेष रास्ते और गुप्त मार्ग बनाए जाते थे, जो केवल उन्हीं को पता होते थे। असमान भू–भाग के कारण दुश्मन को भारी तोपखाना युद्ध के मैदान में ले जाने में भी दिक्कत होती थी, जैसा कि सवाई जय सिंह को थून अभियान में सामना करना पड़ा था। इनके द्वारा बनाये गए अधिकतर दुर्ग एवं गढ़ियाँ ऐसे जंगलों के बीच स्थित थी जहाँ गर्मियों के दिनों में गर्म हवाएँ चलने के साथ–साथ गर्म रेत उड़ती थी और बरसात में इन मैदानों की रेत गीली हो कर कीचड़ में बदल जाती थी। जिसके कारण हाथी, घोड़ों, तोपों आदि के साथ किसी भी सेना का इन तक पहुँचना बहुत कठिन हो जाता था।

प्रमुख प्रतिरक्षात्मक स्थापत्य संरचनाएँ

डीग दुर्ग– ठाकुर बदन सिंह ने डीग में स्थित रूप सागर के दक्षिणी–पश्चिमी दिशा में मार्च, 1723 ई0 में दो अति भव्य, विशाल महलों का निर्माण प्रारम्भ कराया जो 1730 ई0 में पूरा हुआ। बदन सिंह ने अपनी राजधानी डीग को सुरक्षित रखने हेतु रूप सागर के समान्तर पूर्वी दिशा में सुदृढ़ पक्के दुर्ग की नीव डाली। दुर्ग के लिए पत्थरों की व्यवस्था पहाड़ताल से की गई। दुर्ग को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से उसके चारों तरफ गहरी खाई बनाई गई। वर्तमान में केवल एक सड़क, रूप सागर तथा दुर्ग खाई को आपस में पृथक् करती है। दुर्ग का प्रवेश द्वार उत्तर दिशा की तरफ है। दुर्ग में प्रवेश हेतु खाई पर पक्का व स्थाई पुल का निर्माण कराया गया है। 15 एकड़ (6.08 हेक्टेअर) क्षेत्रफल के वर्गाकार निर्मित दुर्ग की 20 फुट चौड़ी तथा ऊँची मजबूत दीवारें हैं। किले के चार कोनों पर एक–एक तथा प्रत्येक भुजा में लगभग 300–300 गज की दूरी पर बने दो–दो बुर्जों का निर्माण करवाया गया है, इस प्रकार पूरे दुर्ग में कुल मिलाकर 12 बुर्ज हैं। किले में जल व्यवस्था के लिए दुर्ग तथा बुर्जों में कुएँ बने हुए हैं।

लोहागढ़ दुर्ग (भरतपुर): यह किला बनाने का कार्य 1743 ई० में प्रारम्भ हुआ, जो कि आठ वर्षों में बनकर तैयार हुआ परन्तु बाहरी कार्य और पुलों का निर्माण 1756 ई0 तक भी पूर्ण नहीं हो सका था। किला शहर का मुख्य आकर्षण है। यह दुर्ग अपनी किलेबन्दी की देशी बनावट और अपने निर्माण कार्य की विचित्रता के कारण समूचे देश के महत्वपूर्ण किलों में से एक है। किला अपने निर्माण के समय से ही अभेद्य समझा जाता है। किले में जल आपूर्ति एवं अकाल के समय जल संरक्षण के लिए दो बांध बनाये गये थे। दुर्ग की बाहरी कच्ची दीवार का घेरा 7 मील का है, जो कि अब खण्डहर हो चुकी है। सबसे अन्दर की दीवार जो किले को चारों ओर से घेरे रहती है बहुत मजबूत और ठोस है। किले में आठ कोने व मीनारें तथा दो दरवाजे हैं उनमें से उत्तर वाला दरवाजा 'अष्टधातु दरवाजा' तथा दूसरा दक्षिण वाला 'लोहिया दरवाजा' कहलाता है। महाराजा जवाहर सिंह इन दरवाजों को दिल्ली से उस पर विजय होने के उपरांत लाया था।" किले में जवाहर बुर्ज 1765 ई0 में दिल्ली पर जवाहर सिंह की विजय के उपलक्ष्य में उसने बनवाया था। भरतपुर के शासकों का राज्याभिषेक इसी इमारत में होता था। फतेह बुर्ज अंग्रेजी सेना को पीछे हटाने की याद में बनाया गया था। किले में अनेक आकर्षक भवन हैं उदाहरणार्थ 'खास महल', 'खास कोठी', 'किशोरी महल', 'हंसिया

रानी महल' इत्यादि। वर्तमान में भरतपुर किले में स्थित संग्रहालय में शासकों द्वारा उपयोग में लायी गयी वस्तुएँ तथा लेख उपलब्ध हैं।

कुम्हेर दुर्ग: कुम्हेर डीग से 18 किलोमीटर तथा भरतपुर से 16 किलोमीटर दूरी पर दोनों स्थानों के मध्य स्थित है। कुम्हेर का किला भौगोलिक रूप से पानी के अभाव के कारण सैन्य दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण था। कुम्हेर के चारों तरफ पेगोंर, सौंख, सोगर, रारह, कसोट, सिनसिनी आदि गाँव स्थित हैं। इस किले में जाट राज्य का खजाना संरक्षित रहता था, इसी कारण इसका 'कुबेरपुर' नाम भी था। कुम्हेर किला मिट्टी का बना हुआ है, जिसकी दीवारें विशाल हैं। सैन्य दृष्टि से किले की मजबूती और मोर्चाबन्दी इसको अजेय बनाती हैं। किले में आपातकाल हेतु काफी बड़ी मात्रा में बारूद, हथियार, खाद्य सामग्री और घास आदि को एकत्र किया जा सकता था। यही कारण था कि सूरजमल के समय मराठा और मुगल तोपखाना कुम्हेर की दीवारों पर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सका था। भरतपुर और डीग के दुर्ग के साथ–साथ कुम्हेर दुर्ग भी अपनी सुदृढ़ता के कारण जाट राज्य के लिए काफी महत्त्वपूर्ण था। भरतपुर और डीग के मध्य स्थित होने के कारण कुम्हेर दुर्ग का काफी महत्व था क्योंकि आवश्यकतानुसार सेना दोनों स्थानों पर यहाँ से शीघ्र पहुँच सकती थी। भरतपुर और डीग दुर्ग की भाँति कुम्हेर दुर्ग की सुरक्षा हेतु खाई का अभाव है। दुर्ग का मुख्य प्रवेश द्वारा पूर्व दिशा में है। प्रवेश द्वार लाल बलुआ पत्थर का बना हुआ है। कुम्हेर दुर्ग की सुदृढ़ता और मजबूती जाट राज्य में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में अद्वितीय है।

वैर का किला: वैर का किला भरतपुर से दक्षिण–पश्चिम में 48 किलोमीटर तथा बयाना से उत्तर–पश्चिम में 17 किलोमीटर दूर है। किले की दीवारें मिट्टी की बनी हुई हैं, जिसके चारों तरफ पानी से भरी हुई गहरी खाई है। प्रवेश के लिए किले में दो विशाल द्वार पूर्व व पश्चिम में है। किले के दरवाजे विशाल और काफी मजबूत हैं, जिस पर लोहे की चादरें व कीलें लगी हुई हैं। वैर शहर में प्रवेश हेतु उत्तर में भरतपुर, पूर्व में कुम्हेर, दक्षिण में बयाना, पश्चिम में सीता और भुसावर नामक पाँच मजबूत दरवाजे हैं। भवन, काछरी, बारूदखाना, सैनिकों के बैरक, छावनी तथा ताजे पानी की पूर्ति हेतु कुआँ आदि सभी किले में स्थित हैं। इस किले में बनाये जाने वाले शस्त्र तथा विस्फोटक सामग्री लगातार जाट राज्य में युद्ध व सुरक्षा हेतु भेजे जाते थे।

अन्य किले एवं गढ़ियाँ

इन किलों के अलावा पूरे जाट क्षेत्र में सिनसिनी, सोघोर, सोंख, खैर, जवार, भोजपुर, रायसी, भटावली, राजाखेड़ा, बदनगढ़ी, बड़गांव, रोहेरे, बराह, बावली, जगसाना, किहराड़ी, महुआ, रतनपुर, रैत, नूंह, ईटे जैसे अनेक किले हैं, परंतु दुर्भाग्यवश इन किलों की स्थापत्य कला के बारे में समकालीन अभिलेखों में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इन किलों के अलावा, पूरे क्षेत्र में एक दूसरे के करीब कई गढ़ियाँ थीं।

प्रमुख आवासीय स्थापत्य संरचनाएँ

जाट शासकों ने डीग में ऐसे महलों का निर्माण किया जो मुगल भव्यता को स्वदेशी सादगी के साथ जोड़ते थे। डीग महल अपने उद्यान भवनों के लिए भारत में विख्यात हैं। इन भवनों की निर्माण योजना ईरानी चारबाग शैली पर आधारित है। डीग के भवनों के योजना विन्यास का केन्द्र इसके परिसर में स्थित वर्गाकार उद्यान है। पूर्वी व पश्चिमी भाग में क्रमशः रूप सागर तथा गोपाल सागर नामक विशाल सरोवर है। उद्यान की चार भुजाओं पर चार भवन स्थित हैं। पूर्व, पश्चिमी, उत्तर तथा दक्षिण में क्रमशः केशव–भवन, गोपाल भवन, नन्द–भवन तथा किशन–भवन हैं। परिसर की अन्य इमारतों में उद्यान के दक्षिणी–पश्चिमी कोने पर सूरज भवन तथा हरदेव भवन स्थित हैं, जो कि किशन भवन से लगे हुए हैं। उत्तरी दिशा में स्थित सिंह पौर नामक मुख्य प्रवेश द्वार है। इसके अतिरिक्त दो अन्य प्रवेश द्वार भी हैं, जो क्रमशः दक्षिण–पश्चिमी तथा उत्तर–पूर्वी कोने पर स्थित हैं।

गोपाल भवन: अपनी विशालता, अवस्थिति एवं उत्कृष्ट वास्तुशिल्प के कारण गोपाल भवन डीग का सर्वोत्तम भवन है। गोपाल भवन किसी भी समकालीन राजपूत स्थापत्य से प्रतिद्वन्द्विता करने में सक्षम है। गोपाल सागर के जल से परावर्तित होकर इसका वास्तु सौन्दर्य आकर्षण पैदा करता है। बाह्य सौन्दर्य के साथ–साथ भवन के अंदरूनी कक्ष प्रकाशयुक्त तथा हवादार हैं। गोपाल भवन की छत गुम्बदनुमा न होकर एकदम सपाट है। यह भवन मुख्य रूप से तीन भागों में बटा है। गोपाल भवन का अग्र भाग एक मंजिला, दायाँ तथा बायाँ भाग द्विमंजिला और पिछला भाग चार मंजिला बना हुआ है। मेहराबों तथा उत्कृष्ट नक्काशी वाले स्तम्भों से सुसज्जित गोपाल भवन वस्तुतः राजकीय स्वागत कक्ष है। गोपाल भवन के दक्षिण दिशा वाले कक्ष में मानवाकार हनुमान जी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई है। भवन की स्थापत्यकला में पच्चीकारी से युक्त स्थापत्य कला तथा शिल्पकारी का सही प्रयोग किया गया है। मुख्य कक्ष के ऊपरी कक्षों में से एक में भारतीय पद्धति का भोजनागार है। इस प्रकार के भोजनागारों को फारसी में 'नसीवा' कहते हैं। भवन के मध्य तथा हॉल के पीछे वाली दीवार 8 फुट चौड़ी है, जिसमें नक्काशी की गई है, जो उत्सव के समय शाही परिवार की महिलाओं के बैठने के लिए प्रयुक्त होती थी। फूल पत्ती, बेल तथा भिन्न–भिन्न प्रकार की ज्यामितीय आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई हैं।

सूरज भवन: डीग के उद्यान भवनों के परिसर में यह एक मात्र भवन है, जो कि संगमरमर का बना हुआ है। इस भवन का नाम महाराजा सूरजमल के नाम पर रखा गया है। इस भवन के चारों ओर बरामदे तथा वर्गाकार कमरे बने हुए हैं, तथा इनके मध्य में हॉल है। बरामदों के मध्य स्थित फव्वारों से सूरज भवन का आकर्षण बढ़ता है। बरामदों के अन्दर व बाहर चारों ओर रंग–बिरंगे सुन्दर पत्थरों से पच्चीकारी का काम किया गया है। केवल भवन के दक्षिणी बरामदे की पच्चीकारी को छोड़कर अधिकांश भवन की पच्चीकारी अपूर्ण है। आगरा, दिल्ली, लखनऊ के शाही व नवाबी महलों की पच्चीकारी कला से यह भिन्न एवं मोटी है। इस भवन में हरित, पीले, नीले, रक्तिम, सुलेमानी कीमती नग, चमकदार सीपें व स्फटिक पत्थरों की जड़ाई की गयी है। श्वेत संगमरमर का यह सुन्दर भवन शाहजहाँ के स्थापत्य कला की याद दिलाता है। सूरज भवन के आन्तरिक बनावट से प्रतीत होता है कि, इस भवन का निर्माण स्त्रियों के आराम और मनोरंजन को ध्यान में रखकर किया गया।

किशन भवन: उद्यान भवन के दक्षिण भाग में बदन सिंह महल के पश्चिम तथा हौज के पूर्व में, और इन दोनों भवनों से सटा हुआ भवन किशन भवन है। हौज के ऊपर जाने वाली ढालू सीढ़ियाँ, किशन भवन को इन दोनों भवनों से पृथक्करती है। किशन भवन का मुख्य भाग हौज की दीवार से आगे निकला हुआ है। किशन भवन की निर्माण शैली अन्य भवनों से भिन्न हैं। मेहराबयुक्त प्रवेश द्वार से भवन के अन्दर एक विशाल कक्ष है, जो कि गोपाल भवन के मुख्य कक्ष के समान है। इस भवन का प्रयोग दरबारी हॉल के रूप में किया जाता था।"

पुराने महल: पुराने महल के नाम से प्रसिद्ध इन भवनों को राजा बदन सिंह ने बनवाया था। इन भवनों का मुख्य प्रवेश द्वार पूरब

की ओर है। इसके प्रवेश द्वार के ऊपर एक विशाल बंगलेदार गुम्बद है, जो चारों ओर से खुली हुई है। दीवारें 4 से 5 फुट तक चौड़ी होने के कारण यह भवन काफी मजबूत है। यहाँ सभी कक्ष साधारण ढंग के हैं।

शीश महलः शीश महल रूप सागर के पूर्वी किनारे पर स्थित है। केशव भवन की तरफ से यह बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। इसके अहाते में भी फव्वारे लगे हुए हैं। शीश महल के अहाते में दोनों तरफ हम्माम भी बने हुए हैं तथा उनके सजावट हेतु उनमें काँच का प्रयोग हुआ था, जिसके कारण उस इमारत को शीश महल के नाम से जाना गया।

केशव भवनः रूप सागर के पश्चिमोत्तर किनारे तथा उद्यान की सतह पर केशव भवन स्थित है। सामान्यतः इस भवन को बारादरी या माछी भवन कहा जाता है। यह एक वर्गाकार तथा चारों तरफ से खुला हुआ भवन है, जिसके चारों ओर 20 मेहराब द्वार हैं। भवन के मध्य एक अन्य वर्गाकार खुला मण्डप, जिसके बारह द्वार हैं और इसके मध्य में धरातल से 6 फीट नीचा फर्श है। इस भवन में फव्वारों की व्यवस्था हेतु खोखली तकनीकी को बड़े ही सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया गया और जल के बहाव को गोपनीय रखा गया। फर्श पर तथा दोनों किनारों की ऊपरी सतहों पर फव्वारों की तीन–तीन कतारें हैं। इस भवन की छत पोली है, और छत से धरातल की ओर फव्वारे चलते हैं। छत में पानी के बहाव को ऐसी दिशाएँ दी गई थीं, कि धाराएँ आपस में टकराकर एक पत्थर के गोले को इधर–उधर लुढ़काती थीं। पत्थर के टकराव से बादल गरजने जैसी ध्वनि उत्पन्न होती थी। छत में जलधारा का प्रवाह इस कौशल से कराया गया है कि यह गोले स्थिर नहीं रह पाते।

प्रमुख उद्यान एवं जलापूर्ति स्थापत्य संरचनाएँ

केन्द्रीय उद्यानः इस उद्यान की योजना मुगल चारबाग प्रणाली की भाँति है। मध्य भाग में पत्थर से बने रास्ते उद्यान को चार भागों में विभक्त करते है। कुछ स्थानों पर झरने के रूप में फव्वारों की कतारें हैं। फव्वारों की एक कतार गोपाल भवन से किशन भवन तक गई है। मध्य भाग में अष्टभुजीय आकृति का हौज है, जिसमें फव्वारों की अनेक कतारें हैं। हौज के मध्य में फव्वारों का 8 फीट ऊँचा गोल गुम्बद बना हुआ है और इसके ऊपरी सतह पर फव्वारों की चादर बनी है। उद्यान में पेड़ों की उपस्थिति कभी–कभी बागवानी की मुगल शैली के प्रचलन में होने का संकेत देती है। उद्यान की भारतीय परम्परा का दर्शन डीग के भवनों में देखा जा सकता है।

रूपसागरः रूपसागर नाम से प्रसिद्ध यह सुन्दर तालाब राजा बदन सिंह के लघु भ्राता रूप सिंह ने बनवाया था। पक्का तालाब के नाम से जाना जाने वाला यह तालाब, डीग की पुरानी संरचनाओं में से एक है। सरोवर की उल्लेखनीय विशिष्टता इसकी आरामदायक चढ़ाई वाले गलियारों व उनके अष्टभुजीय बुर्जों से कई खंडों में विभाजन है।

गोपाल सागरः आयताकार योजना से बने इस सरोवर के बारे में बताया जाता है कि, यह रूप सागर के बराबर गहरा है। इसे कच्चा तालाब भी कहा जाता है। सरोवर के उत्तरी व दक्षिणी भुजाओं पर आकर्षक घाट निर्मित हैं। गोपाल सागर के पूर्वी किनारे पर गोपाल भवन तथा सावन– भादों भवन बने हुए हैं। गोपाल सागर के जल में इन भवनों की आकृति काफी मनमोहक प्रतीत होता है।

शोध निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर यह प्रतीत होता है कि जाट स्थापत्य में उनके दुर्ग निर्माण की मूल विशेषताएं मिट्टी की प्राचीर या किले की दीवार हैं जो कभी–कभी ईंटों और पत्थरों से ढकी होती थीं, चारों ओर दोहरी दीवारें, किले के चारों ओर खाई, मजबूत बुर्ज, वन क्षेत्र का विस्तार, असमान भूभाग, विशाल किले, किलों की रणनीतिक स्थिति इसमें प्रमुख भूमिका निभाती है। जाट दुर्ग निर्माण पद्धति उनके संगठनात्मक कौशल, सैन्य दक्षता और स्थानीय संसाधनों के कुशल उपयोग का प्रतीक है। यह पद्धति न केवल उनकी सुरक्षा का माध्यम थी, बल्कि उनकी स्वतंत्रता और स्वाभिमान का प्रतीक भी थी। जाटों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपने स्थापत्य में परिवर्तन किए। यद्यपि हम जाट किलों में अनेक विशेषताओं का अस्तित्व पाते हैं, लेकिन ये विशेषताएं इतनी सामान्य थीं कि हम यह नहीं कह सकते कि इन्हें कहीं और से उधार लिया गया है। आवासीय महलों, बगीचों एवं जलापूर्ति हेतु प्रयुक्त स्थापत्य को देखें तो जाटों ने एक उन्नत एवं नई स्थापत्यकला को जन्म दिया जो राजपूत एवं मुग़ल कला के मिश्रण के साथ–साथ अपनी स्वयं कि ईजाद कि गयी तकनीक एवं कला का परिणाम है। जाट स्थापत्यकला में सरलता और उपयोगिता पर जोर दिया जाता था। इसमें अनावश्यक सजावट की बजाय व्यावहारिकता को प्राथमिकता दी जाती थी। आमतौर पर निर्माण में स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाता था। सभी जाट शासक कला और स्थापत्य के विकास में रुचि लेते थे। कलाकारों और वास्तुकारों को पूर्ण प्रोत्साहन उनके राज्य में मिलता था। 18वीं शताब्दी के दौरान जाटों का स्थापत्य योगदान उनकी सांस्कृतिक पहचान, राजनीतिक आकांक्षाओं और कलात्मक संवेदनाओं के प्रमाण के रूप में खड़ा है। स्थानीय परंपराओं को बाहरी प्रभावों के साथ मिलाने की उनकी क्षमता के परिणामस्वरूप ऐसी संरचनाएँ बनीं जो कार्यात्मक और सौंदर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण थीं। जाट स्थापत्यकला में शोध भारतीय इतिहास के संक्रमण काल के दौरान क्षेत्रीय वास्तुकला विकास में गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है।

संदर्भ सूची

1. वर्मा, अमित, फोट्र्स इन इण्डिया, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली, 1985
2. गुप्ता, डा० मोहनलाल, राजस्थान के ऐतिहासिक दुर्ग, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2021
3. खफी खान, मुंतखब उल लुवाब, संपादक– मौलवी कबीर अल दीन अहमद, भाग– 2, बिब्लियोथिक इंडिका, ए कलेक्शन ऑफ़ ओरिएंटल वर्क्स, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल के सहयोग से, उर्दू गाइड प्रेस, कोलकाता, 1874
4. कानूनगो, प्रो० कालिका रंजन, जाटों का इतिहास, संपादक– डा० वीर सिंह, ओरिजिन्लस प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृष्ठ दृ 98
5. द्विवेदी, डॉक्टर गिरीश चंद्र, जाट और मुगल साम्राज्य, प्रथम संस्करण, संपादक– डा० वीर सिंह, ओरिजिन्लस प्रकाशन, निमड़ी कमर्शियल सेंटर, अशोक विहार, फेज–4, दिल्ली, 2002
6. फैबरी, चार्ल्स, एन इंटरोडक्शन टू इंडियन आर्किटैक्चर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई, 1963
7. शर्मा, जी.डी., राजपूत राजव्यवस्था और जाट किलेबंदी, रावत प्रकाशन, जयपुर, 1986
8. आशेर, कैथरीन बी., मुगल भारत की वास्तुकला, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1992
9. नारायण, ए.के., जाटः उत्तरी भारत के इतिहास और संस्कृति में उनकी भूमिका, आगरा यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994